लोकतन्त्र और चुनाव सुधार

डॉ. प्रदीप कुमार सिंह*

हमारे संविधान निर्माताओं ने लम्बे विचार विमर्श के बाद बेस्ट–मिन्सटन प्रणाली पर आधारित लोकतांत्रिक स्वरूप वाली सरकार का वरण करके देवदूतों जैसी भविष्य दृष्टि का परिचय दिया। दरअसल हम भारतीयों के लिए लोकतन्त्र केवल शासन पद्धति ही नहीं बल्कि जीवनशैली भी है। चुनाव लोकतन्त्र की आत्मा है। हमारा लोकतन्त्र प्रत्यक्ष न होकर प्रतिनिधियों को चुनता है और सार्वजनिक मामलों मे उसकी भागीदारी इसी तरह कायम होती है। केवल लोकतांत्रिक पद्धति से होने वाले चुनावों के माध्यम से ही सत्ता का शान्तिपूर्ण और व्यवस्थित हस्तान्तरण होता है।

आजादी के बाद से अब तक आधी शताब्दी पूरी हो जाने के बाद भी भारत में अशिक्षा का जो वातावरण व्याप्त है, उसमें लोकतन्त्र का बने रहना अपने आप में सराहनीय है। पिछले दो दशकों से भारतीय राजनीति में कुछ ऐसे तत्वों का प्रवेश हो गया है, जिसने निर्वाचन प्रणाली को दोषपूर्ण बना दिया है। भारत के निर्वाचन प्रणाली में हल के वर्षों में विसंगतियाँ आ गयी हैं और इस कारण से लोकतन्त्र का दुरुपयोग होने लगा है। अशिक्षा के कारण भारतीय नागरिक अपने मताधिकार के प्रति जागरूक नहीं हो पाये हैं और जहाँ वे जागरूक हो भी गये हैं, वहाँ आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों द्वारा दबाए जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में निर्वाचन–आयोग ने चुनाव की सुचारू व्यवस्था के लिए अपने प्रयास किये, परन्तु उसे आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई।[1]

हाल के वर्षों में भारतीय राजनीति में जो एक तथ्य तेजी से उभरा है, वह है धार्मिक और जातीय भेदभाव। राजनेताओं वे वोट की राजनीति का ऐसा दुरुपयोग किया है कि सम्पूर्ण भारतीय जनता अनेक छोटे–छोटे वर्गों में बंट गयी है। उनमें धर्म विषाक्त भावना आ गयी है कि वे एक–दूसरे को मारने पर उतारू हो जाते हैं।

भारतीय राजनीति में जो एक और प्रमुख तत्व हावी हो रहा है वह है भाई–भतीजावाद। हर एक राजनेता अपने परिवार के सदस्यों को बढ़ाने के क्रम में देश के विकास और जनता के हित की बात भूल जाते हैं। जो पुराने राजनीतिज्ञ होते हैं, वे अपने दबदबे के कारण अपने परिवार के अयोग्य सदस्यों को भी निर्वाचित कराने में सफल होते हैं। हमारे देश के नागरिक अशिक्षित होने के कारण भावना में बहुत जल्दी बह जाते हैं। जब

---

* प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग, साकेत कॉलेज, अयोध्या, फैजाबाद

हमारे देश में राजनेताओं को धर्म और जाति के विभाजन से भी सन्दोष नहीं हुआ, तब उन्होंने वर्ग विभाजन को उभारने की कोशिश की। चुनाव प्रक्रिया दिन–प्रतिदिन अल्पसंख्यकवाद, साम्प्रदायिकता, मजहब और जातिवाद के दुष्चक्र में फँसती चली जा रही है और उस पर अपराधी तत्वों का भी शिकंजा कसता जा रहा हहै। यदि यही स्थिति रही तो फिर भारतीय चुनाव प्रक्रिया शान्तिप्रिय नागरिकों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगी, बल्कि वह माफिया तत्वों साम्प्रदायिकता तथा जातिवाद का ही प्रतिनिधित्व करेगी। भारतीय राजनीति में जातिवाद–सम्प्रदायवाद और धनबल का बोलबाला इसलिए है क्योंकि हमारे राजनीतिक दलों ने छल–बल से चुनाव जीतने की क्षमता को उसकी योग्यता का आधार मान लिया है। हमारी गिनती दुनिया के सबसे अधिक भ्रष्ट तेरह देशों में होती है। मारे पास प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की कमी नहीं है। लेकिन एक चौथाई आबादी गरीबी और बेरोजगारी के दलदल में फंसी हुई है। यह सब हमारी कमियों का ही नतीजा है। जब संसद और विधानसभाओं में नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू किये जाने और उसके नतीजों पर बहस के बजाय शोर–शराबा और घोटाले उजागर होंगे तो इस देश में अराजकता, हिंसा, आतंकवाद और नक्सलवाद नहीं पैदा हो तो और क्या होगा?[2]

देश में वर्तमान चुनाव प्रणाली की शुरुआत मिन्टो–मारलो ने की थी तथा व्याप्त विकृतियों में सुधार की पहल मांटेग्यू चेम्सफोर्ड के काल में हुई थी। परन्तु चुनाव प्रणाली में जो त्रुटियां रह गयी थी उन पर स्वतन्त्रता काल में कोई ध्यान नहीं दिया गया। स्वतन्त्रता के बाद चुनाव सुधारों की आवश्यकता सम्भवतः सातवें दशक के उत्तरार्ध में महसूस की जाने लगी थी। आजादी के बाद के दिनों में व्यवसथा के काम–काज में आने वाली कठिनाइयों ने इन सुधारों के लिए प्रेरित किया था। एक के बाद एक होने वाले चुनावों में एक ही पार्टी को विजय मिलने के कारण भी चुनाव सुधारों की आवश्यकता महसूस की गयी। चुनाव सुधारों के पक्षधरों का मानना था कि यह स्थिति भारतीय लोकतन्त्र के कुछ मूल तत्वों, जैसे बहुमत की भावनाओं की अभिव्यक्ति और विविध हितों के प्रतिनिधित्व के अनुकूल नहीं थी। चुनाव सुधारों में सर्वांगीण परिवर्तन के लिए सर्वप्रथम 1970 में एक संसदीय समिति का गठन किया गया लेकिन उसी वर्ष दिसम्बर में लोकसभा भंग किये जाने के साथ ही उस समिति के जीवन का भी अंत हो गया। चुनाव सुधारों के सम्बन्ध में अध्ययन करके उनका एक प्रारूप तैयार करने के लिए अगस्त 1974 में 'सिटीजन्स फॉरडेमोक्रेसी' की ओर से लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने बम्बई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बी.एम. तारकुंडे के नेतृत्व में सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की बैठक में लिए गये निर्णय के आधार पर चुनाव सुधारों के लिए एक समिति गठित की गयी। उस समिति में सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि शामिल थे।

तत्कालीन विधि एवं न्यायमंत्री दिनेश गोस्वामी उसके अध्यक्ष बनाये गये थे। समिति ने अपनी रिपोर्ट मई 1990 में पेश की। इसी तरह 1993 में गठित बोहरा समिति की रिपोर्ट से यह बात साफ हो गयी कि राजनीति में अपराधियों की भूमिका बढ़ गयी है।[3]

भारत में संसदीय परम्परा संविधान की उपेक्षा किसी न किसी तरह से हमेशा होती रही है जिन–जिन रूपों में संविधान की उपेक्षा होती है उन्हें वर्णित करना अपेक्षित नहीं है, परन्तु यह तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि निर्वाचन के समय ही संविधान की सर्वाधिक उपेक्षा होती है। हमारे यहाँ लम्बे समय तक दबे कुचले और दलित वर्गों को मतदान से सिर्फ उनकी राजनीतिक न समझी और लोकतांत्रिक अवचेना से ही वंचित नहीं रखा, बल्कि दबंग उच्च वर्गों ने भी उन्हें वोट पेटिका तक नहीं पहुंचने दिया, मगर देश की किसी भी राजनीतिक पार्टी ने इस मसले को लेकर देश में आन्दोलन नहीं किया।[4]

लोकतांत्रिक प्रणाली में चुनाव एक यज्ञ माना जाता है जिसके माध्यम से न केवल जन प्रतिनिधित्व निर्धारित होता है अपितु जनता द्वारा जनता की सरकार का चयन होता है। आज के समय में चुनाव संविधान की कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे हैं। चुनाव सुधार के लिए राजनीतिक दलों के अपनाए गये रवैये से यह बात साफ हो गयी है कि अभी इस लोकतन्त्र का और अधिक पतन होगा। ऐसा लगता है कि जो देश को जिनता अधिक डुबोयेगा वह उतना ही बड़ा नेता होगा। चुनाव प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने की अदालती कोशिश ठुकराने में दलगत मतभेदों को भुलाकर 21 राजनीतिक दलों ने जो अद्‌भुत एकता दिखायी है उससे यह साबित हो गया है कि हमारे राजनीतिज्ञ देश को कहाँ ले जा रहे हैं हमारा सुप्रीम कोर्ट भी यह चाहता है कि हर उम्मीदरवार की पृष्ठभूमि मतदाता के सामने रखी जाए ताकि मतदाता वोट देने के अपने अधिकार का (जो अदालत की निगाह में अभिव्यक्ति के मूल अधिकार का रूप है) बेहतर इस्तेमाल कर सकें।[5]

हमारी चुनाव प्रणाली में व्याप्त अनियमितताएं और उनके संदर्भ में सुधार को लेकर समय–समय पर सरकार का ध्यान खींचा गया, कमेटियां गठित की गयी, रिपोर्ट आयी लेकिन कुछ सार्थक नहीं हुआ, कुछ सुधार जो हमारी समझ से तत्काल अपेक्षित है वह निम्न है–

1. दल–बदल कानून में परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि यदि कोई उम्मीदवार चुनाव जीतने के बाद पार्टी छोड़ता है तो उसे अपनी सीट खाली करनी पड़े।
2. किसी सम्प्रदाय, नस्ल अथवा जाति के नाम पर अपना पूरा अथवा आंशिक नामकरण करने वाले दल का चुनाव लड़ने वाली राजनीतिक पार्टी के रूप में पंजीकरण नहीं करना चाहिए।

3. चुनावों के पहले दौरान अथवा बाद में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले राजनीतिक दल का पंजीकरण रद्द कर दिया जाना चाहिए और उसे चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाना चाहिए।
4. मतदाताओं के लिए बहुस्तरीय कार्ड बनाना चाहिए जो उसे लेकर देश के किसी भी मतदान केन्द्रों में मतदान कर सकें।
5. नागरिकों को मत देने का अधिकार है। यह उनका कर्तव्य भी है। इसलिए कुछ अन्य देशों की तरह भारत में भी मतदान अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। सभी मतदाताओं को मत केन्द्रों पर जाना चाहिए और उम्मीदवारों को अपनी पसंद के अनुसार वरीयता देनी चाहिए। मगर कुछ मतदाता सभी उम्मीदवारों को नापसन्द करते हैं तो वे 'अस्वीकार मत' दे सकते है।[6]
6. एक उम्मीदवार को एक से अधिक चुनाव क्षेत्रों में चुनाव लड़ने पर रोक लगायी जानी चाहिए।
7. बल और हिंसा युक्त डकैती व अन्य अपराधों के बारे में प्रमाणित दोषी लोगों को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।
8. चुनाव में कालेधन का व्यापक प्रयोग होता है जिस पर कड़ाई से रोक लगनी चाहिए और मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को सरकार की तरफ से सहायता दी जानी चाहिए।
9. चुनाव आयोग को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वह उम्मीदवारों के लिए एक योग्यता निर्धारित करे जो सर्वमान्य हो। क्योंकि जो लोग देश और दुनिया की नियति तय करने वाले हो उनकी योग्यता तो तय होनी चाहिए।
10. चुनाव आयोग को और अधिकार देने चाहिए जिससे वह अधिक निष्पक्ष निर्णय ले सके।

संदर्भ–सूची–

1. सुभाष कश्यप–भारतीय राजनीति और संसद–राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 4 मार्च, 2006
3. वाई–यादव– ट्रांसफार्मिंग इण्डिया, नई दिल्ली
4. विमल जालान–भारत की राजनीति, पेंगुइन कथेतर,
5. जे.के. रे–इण्डिया : इन सर्च ऑफ गुड गवर्नेंस–कलकत्ता
6. इकोनॉमिक्स एण्ड पालीटिकल वीकली–2008, जून

****